स्वास्थ्य सेवाओं की पोल खोल दी चमकी बुखार ने

देश के कुल प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में 22 फीसदी और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रो में 32 फीसदी की कमी बनी हुई है। 50 फीसदी लोग किसी तरह का उपचार हासिल करने के लिए सौ किलोमीटर से ज्यादा का सफर करते हैं. और भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का 70 प्रतिशत बुनियादी ढांचा देश के टॉप-20 शहरों में लगा है। सरकारी सुविधाओं की बदहाली के बीच निजी अस्पताल, क्लिनिक आदि का बोलबाला है। पिछले 20 साल में ग्रामीण और शहरी इलाकों में, निजी अस्पतालों में इलाज कराने की दर में बढ़ोतरी हुई है। 2014 को ही देखें तो ग्रामीण इलाकों में 42 फीसदी लोग सरकारी अस्पतालों में गए और 58 फीसदी लोग निजी में, शहरी इलाकों में 32 फीसदी सरकारी तो 68 फीसदी निजी अस्पतालों में गए।

मुजफ्फरपुर में दर्जनों बच्चों की मौत ने भारत में स्वास्थ्य सेवाओं के संकट को सामने ला दिया है। चमकी बुखार से हर रोज नौनिहाल बेमौत काल के गाल में समा रहे हैं। ऐसे वक्त सरकार, स्वास्थ्य विभाग, प्रशासन, सरकार और आयुष मंत्रालय बेबस, लाचार और पंगु दिखाई दे रहा है। सरकारी अमले को जैसी सक्रियता दिखानी चाहिए थी, वो सिरे से गायब हैं। आधारभूत ढांचे की कमी, मेडिकल कॉलेजों, अस्पतालों, प्रशिक्षित डॉक्टरों और नस्रो के अभाव की वजह से देश में स्वास्थ्य सेवाएं पहले से ही बीमार हैं। आबादी लगातार बढ़ने के बावजूद आधारभूत ढांचे में सुधार पर अब तक कोई ध्यान नहीं दिया गया।

बिहार सरकार से लेकर केंद्र सरकार तक इस विपदा से निपटने के दावे कर रही है लेकिन बच्चों की मौत का आंकड़ा हर दिन बढ़ता जा रहा है। बीमारी का नाम और उसके लक्षणों की जानकारी होने का बाद भी उसके बचाव के पहले से इंतजाम क्यों नहीं किए गए। ये सवाल उठने के पीछे ठोस वजह है।

क्योंकि ये बीमारी इस मौसम में हर साल बच्चों की मौत का कारण बनती रही है। बिहार से सटे राज्य उत्तर प्रदेश के गोरखपुर व आसपास के जिलों में में भी अनेक वर्षो से हर साल छोटे बच्चे बड़ी संख्या में मारे जाते रहे। योगी आदित्यनाथ के मुख्यमंत्री बनने के बाद इसे लेकर खूब हल्ला मचा और उसके बाद से स्थिति पर कुछ हद तक नियंत्रण स्थापित किया जा सका है। हैरानी की बात है कि सब वुछ जानते-समझते हुए भी बिहार सरकार ने समय रहते इस दिशा में समुचित कदम क्यों नहीं उठाए? देश में स्वास्थ्य सेवाओं की सेहत कितनी खराब दशा में है, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि देश में स्वास्थ्य के क्षेत्र में सरकारी खर्च बीते लगभग एक दशक से सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) के लगभग 1.3 प्रतिशत पर ही स्थिर है। छह फीसदी के वैश्विक स्तर की रोशनी में यह आंकड़ा बेहद दयनीय नजर आता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 में वर्ष 2025 तक इसे बढ़ाकर जीडीपी का 2.5 फीसदी करने का प्रस्ताव है। भूटान, श्रीलंका और नेपाल जैसे गरीब देश भी स्वास्थ्य सेवाओं पर डीजीपी का क्रमश: 2.5 फीसदी, 1.6 फीसदी और 1.1 फीसदी खर्च करते हैं।

नेशनल हेल्थ प्रोफाइल 2018 के आंकड़े भी इस बात की तस्दीक करते हैं। नेशनल हेल्थ प्रोफाइल 2018 मुताबिक भारत उन देशों में शुमार है जहां स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकारी खर्च सबसे कम है। यहां वर्ष 2009-10 में स्वास्थ्य सेवाओं पर प्रति व्यक्ति सालाना सरकारी खर्च 621 रुपए था, जो वर्ष 2015-16 में बढ़कर 1,112 रुपए (यानि करीब 15 डॉलर) तक पहुंचा। अब भी इसमें खास वृद्धि नहीं हुई है। इसके मुकाबले स्विट्जरलैंड का खर्च प्रति व्यक्ति 6,944 अमेरिकी डॉलर, अमेरिका का 4,802 डॉलर और इंग्लैंड का साढ़े तीन हजार अमेरिकी डॉलर है।

देश की आबादी जितने समय में सात गुनी बढ़ गई, उस दौरान अस्पतालों की तादाद दोगुनी भी नहीं बढ़ सकी। मोटे अनुमान के मुताबिक देश में फिलहाल छोटे-बड़े लगभग 70 हजार अस्पताल हैं। लेकिन उनमें 60 फीसदी ऐसे हैं जिनमें 30 या उससे कम बेड हैं। सौ या उससे ज्यादा बिस्तरों वाले अस्पतालों की तादाद तीन हजार से कुछ ज्यादा है। इस लिहाज से देखें तो लगभग सवा छह सौ नागरिकों के लिए अस्पतालों में महज एक बिस्तर उपलब्ध है। इससे हालात की गंभीरता का अनुमान लगाया जा सकता है।

स्वास्थ्य सेवाओं पर आम लोगों की जेब से खर्च होने वाली भारी रकम से सामाजिक-आर्थिक संतुलन भी गड़बड़ा रहा है। एक अनुमान के मुताबिक सात फीसदी आबादी हर साल इसी वजह से गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) चली जाती है। ऐसे लोग इलाज के लिए भारी कर्ज लेते हैं। यही नहीं, 23 फीसदी बीमार लोग तो पैसों की कमी से अपना सही इलाज भी नहीं करा पाते।

देश के कुल प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रो में 22 फीसदी और सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रो में 32 फीसदी की कमी बनी हुई है। 50 फीसदी लोग किसी तरह का उपचार हासिल करने के लिए सौ किलोमीटर से ज्यादा का सफर करते हैं. और भारत में स्वास्थ्य सेवाओं का 70 प्रतिशत बुनियादी ढांचा देश के टॉप-20 शहरों में लगा है। सरकारी सुविधाओं की बदहाली के बीच निजी अस्पताल, क्लिनिक आदि का बोलबाला है। पिछले 20 साल में ग्रामीण और शहरी इलाकों में, निजी अस्पतालों में इलाज कराने की दर में बढ़ोतरी हुई है। 2014 को ही देखें तो ग्रामीण इलाकों में 42 फीसदी लोग सरकारी अस्पतालों में गए और 58 फीसदी लोग निजी में, शहरी इलाकों में 32 फीसदी सरकारी तो 68 फीसदी निजी अस्पतालों में गए।

भारत की 48 फीसदी आबादी देश के जिन नौ सबसे गरीब राज्यों में बसर करती है वहां नवजात बच्चों की मौत के 70 फीसदी मामले होते हैं और 62 फीसदी मातृ मृत्यु दर है। बच्चे कुपोषित हैं और बीमार हैं। इन नौ में से अगर उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों को ही देखें तो पूरे देश में बच्चों की कुल मौतों में से 58 फीसदी इन राज्यों में होती हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के एक आंकड़े के अनुसार इन राज्यों में सार्वजनिक स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के लिए वुल निर्धारित मद का बहुत कम प्रतिशत ही खर्च किया जाता रहा है। दूसरी ओर इन राज्यों में सामुदायिक और प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या भी कम है और डॉक्टर और अन्य स्टाफ भी पर्याप्त नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की ओर से बीते साल जारी स्वास्थ्य वित्तीय प्रोफाइल में कहा गया था कि भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले खर्च का 67.78 फीसदी आम लोगों की जेब से जाता है जबकि इस मामले में वैश्विक औसत महज 18.2 फीसदी है। इसका भी सबसे बड़ा हिस्सा लगभग 43 फीसदी दवाओं पर खर्च होता है।

सरकारी अस्पतालों में आए मरीजों के लिए समुचित इलाज नहीं उपलब्ध होना भी शर्मनाक है। जमीन पर बिना पंखों के पड़े गरीब बच्चों के साथ उनके परिजनों की बदहाली देख-देखकर दुख तो होता ही है लेकिन उससे ज्यादा क्रोध आता है। ये हालात एक दिन में उत्पन्न नहीं हुए और देश के किसी न किसी हिस्से में हर वर्ष इस तरह की महामारी से थोक में लोग मारे जाते हैं।

दुर्भाग्य की बात ये है कि इस तरह की बीमारियों में मरने वाले अधिकतर लोग चाहे वे किसी भी उम्र के हों, गरीब वर्ग से आते हैं। उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति से ज्यादा वे परिस्थितियां इसके लिए जिम्मेदार हैं जिनमें रहने के लिए वे मजबूर हैं।

स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार, राजनीतिक इच्छाशक्ति के बिना तो नहीं होगा। सवाल यही है कि ये आए वैसे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पिछले कार्यकाल में आयुष्मान योजना शुरू करते हुए गरीबों को 5 लाख तक का इलाज सरकारी या निजी अस्पताल में करवाने की सुविधा दी थी। इस योजना ने लोकसभा चुनाव में भाजपा को बहुत लाभ पहुंचाया लेकिन चुनाव खत्म होने के एक माह के भीतर ही बिहार में तकरीबन 100 बच्चों की मौतों से ये सिद्ध हो गया कि योजना चाहे कितनी भी अच्छी हो लेकिन जब तक उसका लाभ देश के आम इंसान तक न पहुंचे उसका कोई मतलब नहीं है।

आर्थिक समृद्धि और विकास की तेज गति के बीच स्वास्थ्य कल्याण के कई वैश्विक सूचकांकों में भारत आज भी पिछड़ा हुआ है।

अगर क्यूबा जैसा छोटा-सा देश पब्लिक हेल्थकेयर की एक अप्रतिम मिसाल बना सकता है तो यूं विश्व शक्ति बनने को बेताब भारत क्यों नहीं। ऐसा नहीं है कि इंसेफेलाइटिस जिसे चमकी बुखार के नाम से जाना जाता है, ये बीमारी लाइलाज है लेकिन घटना के तमाम नैतिक और राजनैतिक पहलुओं के बीच इस बात पर भी सोचें कि आजादी के 70 साल बाद भी ऐसी मौतें उस देश में संभव हैं जो रोज नई ऊंचाइयों को छूने को तत्पर, लालायित और दावेदार बना हुआ है। इस घटना ने देश के स्वास्थ्य मिशन की पोल भी खोल दी है और उस बड़े खतरे की ओर भी संकेत किया है जो सरकारी सेवाओं के धीरे-धीरे निजी हाथों में विलीन होते जाने के रूप में देखा जा रहा है। मुजफ्फरपुर में नौनिहालों की मौत से सीख लेते हुए राष्ट्रीय स्तर पर इस तरह की घटनाओं को रोकने के लिए समयबद्ध कार्ययोजना बननी ही चाहिए।